भारतीय संस्कृति में जैन-दर्शन का अवदान

(डॉ. मुलखराज जैन)

'संस्कृति' बड़ा मोहक तथा आकर्षक शब्द है। इसकी व्युत्पत्ति 'संस्कार' शब्द से होती है, जिस का अभिप्राय है - परिष्कृत करना अथवा उत्तम बनाना। प्रत्येक देश की अपनी एक संस्कृति होती है जो वहां के जन समुदाय की परिष्कृत भावनाओं, संस्कारों और चिंतन का प्रतिबिम्ब हुआ करती है। भारत की भी अपनी एक संस्कृति है जो भारतीयों के संस्कारों, भावनाओं, चिंतन और जीवन मूल्यों की परिचायिका है।

भारतीय संस्कृति हमारे पूर्वजों की थाती है जो युगों-युगों के अनुभूत सत्यों की अर्जित सम्पत्ति है। भारत में विभिन्न प्रकार की जातियां, साधनाएं, मान्यताएं और आचार पद्धतियां हैं, फिर भी भारतीय संस्कृति अपने मूलभूत गुणों और विशेषताओं के कारण अब भी जीवित है। वे मूलभूत गुण अथवा विशेषताएं हैं - समन्वय-भावना, अध्यात्म-साधना और आत्मसंयम, गुणग्रहण-शीलता आदि।

'समन्वय-भावना' भारतीय संस्कृति की मूल भित्ति है। इसी गुण के कारण नाना धर्म-साधनाओं और आचार-निष्ठाओं के होते हुए भी इसने समस्त धर्मों के लिए त्याग और मोक्ष के द्वार खोल दिए। स्वामी रामानन्द प्रभृति आचार्यों ने एक ओर 'सगुणमतवाद' की प्रतिष्ठा की तो दूसरी ओर 'निर्गुणमतवाद' को भी प्रश्रय दिया। यह गुण इसी समन्वय-साधना का ही परिणाम है। वास्तव में भारतीय संस्कृति ने 'व्यक्तिगत' धर्म साधना को अधिक महत्त्व दिया है। यही कारण है कि व्यक्ति को यदि किसी विशेष साधना-पद्धति से आनन्दानुभूति होती हो तो भारतीय संस्कृति उसे सहर्ष स्वीकार करती है। तुलसीदास भारतीय संस्कृति के उन्नायकों में से एक हैं, जिनका 'मानस' समन्वय की विराट चेष्टा है। शंकराचार्य के 'अद्वैतवाद' और रामानुजाचार्य के 'विशिष्टाद्वैतवाद' के मध्य ज्ञान और भक्ति को लेकर दार्शनिक वैमनस्य आरम्भ हो गया था। एक केवल ज्ञान को दूसरा केवल भक्ति को मोक्ष-मार्ग मानता था। तुलसी ने दोनों को अभिन्न मानकर भव-भय-नाशक स्वीकार किया।

अध्यात्म साधना और आत्म-संयम के संदर्भ में भारतीय संस्कृति ने 'भौतिक सुखवाद' को कभी वरीयता प्रदान नहीं की। यह एक आर्य-संस्कृति है। त्याग से अनुप्राणित और तपस्या से पोषित भारतीय संस्कृति का भव्य प्रासाद हमारे ऋषियों और श्रमणों से ही शोभा पा रहा है। मध्य युग से पूर्व सिद्धों ने 'महासुखवाद' को अपनी साधना का अंग बना लिया था। सिद्ध सरहपाद ने यह घोषणा की थी कि 'खाते-पीते, सुरत का रमण करते, सुन्दरियों के चक्र में घूमते इस प्रकार जो सिद्धि पाकर परलोक जाता है, वही संसार के माथे पर पाँव रखकर आगे बढ़ जाता है।'[1] परन्तु यह सब भारतीय संस्कृति में न खप सका। जब सिकन्दर ने अपने आक्रमण के समय महान भारतीय ऋषि दाण्डयायन को भय से अथवा प्रलोभन से अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया तब ऋषि ने उत्तर दिया कि मैं तुम्हारी इच्छा का क्रीडा-कंदुक नहीं बन सकता। इच्छाओं का शमन और त्याग ही भारतीय संस्कृति का अमर स्वर रहा है।

सत्य का अन्वेषण और दूसरे के अच्छे गुणों को ग्रहण करने में भारतीय संस्कृति ने कभी संकोच नहीं किया। भारतीय ज्योतिष का विकास यूनानी ज्योतिष के प्रभाव से हुआ। इसी प्रकार नाट्यशाला, मूर्ति-कला पर भी यूनानी प्रभाव मिलता है।[2] यद्यपि भारतीय संस्कृति में श्रमण, यति और सन्त लोग अत्यन्त त्याग को महत्त्व देते हैं परन्तु समाज-हितमें उन्होंने दूसरों के अच्छे गुणों को उपादेय स्वीकार किया।

भारतीय संस्कृति में जैन दर्शन का अवदान –

जैन दर्शन भारतीय संस्कृति के विशालतम वृक्ष का ही एक मधुरतम फल है। जैन दर्शन ने अपने चिन्तन में जो क्रान्ति उत्पन्न की उसने भारतीय संस्कृति पर गहरी छाप छोड़ी है। यद्यपि जैन दर्शन प्रवाह से चली आ रही भारतीय संस्कृति का ही एक स्रोत है तथापि इस स्रोत की कुछ निजी धाराएं हैं, जो अन्य संस्कृतियों की नहीं। अहिंसा की सूक्ष्म व्याख्या, ईश्वर की सृष्टि-कर्ता के रूप में अस्वीकृति, अनेकान्तवाद आदि ऐसी ही उसकी कुछ चिंतन धाराएं हैं जिनका गौरव जैन श्रमणों की दीर्घ साधना और अनुभूति के साथ जुड़ा हुआ है।

वैदिक संस्कृति में भी अहिंसा जैसे तत्त्व पर विचार किया गया है परन्तु ब्राह्मण-संस्कृति-प्रधान होने से उसमें वैदिक युग के बाद जिस पशुबलि का प्रचलन हो गया था उससे जन समाज में वैषम्य तथा उद्विग्नता उत्पन्न हो गई थी। यज्ञों को जीवन की संस्कृति मान लिया गया था। आगे चलकर महावीर ने इस संस्कृति का समर्थन नहीं किया। लोगों में चिरकाल से चली आ रही - 'वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति - के विरोध में विचार भेद हुआ। महावीर को इस के लिए अनेक अवरोधों का सामना करना पड़ा। यज्ञों में पशु-बलि के स्थान पर महावीर ने घोषणा की कि 'सभी जीव जीना चाहते हैं, सुख सब को अनुकूल है, दुःख प्रतिकूल है, वध अप्रिय है अतः किसी भी प्राणी को मत मारो।[3] उपनिषद् काल में आगे चलकर इस का प्रभाव पड़ा।

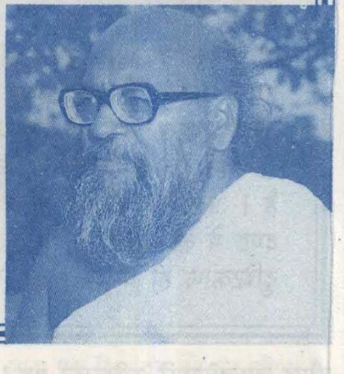

[1] खाअन्ते, पीवन्ते सुरअ रमन्ते। अलि-उल वहल हो चम्क करंते ।।
एवहि सिद्धि जाई परलोह। माथे पाअ देइ मुअलेअह ।।
(सिद्धसरहपाद–दोहाकोश)

[2] भारतीय संस्कृति दिग्दर्शन श्यामचन्द्र कपूर।
सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं।

[3] तम्हा पाणवहं चोरं, निग्गथा वज्जयंतिणं ।। (समणसुत्तं)

नेह तज तन धन नार का, तजे कीर्ति अरुमान।
जयन्तसेन वीर वही, करता जग कल्याण ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय दर्शनों और मतवादों में केवल जैन दर्शन ही एक ऐसा दर्शन है जिसने ईश्वर को सृष्टि-नियन्ता स्वीकार नहीं किया। यद्यपि सांख्य दर्शन यह नहीं मानता कि सृष्टि की रचना किसी ईश्वर ने की है, इसी प्रकार योग दर्शन नहीं मानता कि सृष्टि का निर्माण ईश्वर ने किया है[१] तथापि प्रकारान्तर रूप से ये ईश्वर की कर्ता के रूप में सत्ता तो स्वीकार करते ही हैं। परन्तु जैन दर्शन ने घोषणा की कि सृष्टि प्रवाह तो अनादि है और जड़-चेतन के संसर्ग से स्वयं चालित है। इस चिंतन ने भारतीय संस्कृति को नया मोड़ दिया।

जैन दर्शन की भारतीय संस्कृति को सब से बड़ी देन 'अनेकांतवाद' का सिद्धान्त है। 'अनेकांतवाद' किसी वस्तु तत्त्व को अनेक पहलुओं और अपेक्षाओं से परखकर उसमें से सत्य का अन्वेषण करने का एक मान दण्ड है। 'अनेकांतवाद' दार्शनिक मतवादों के गहन सिद्धान्ती को अपेक्षा दृष्टि से देखकर उन सभी में निहित सत्यता को स्वीकार करता है। मनुष्य का ज्ञान अपूर्ण है और ऐसा कोई मार्ग नहीं है जिसपर चलकर एक ही व्यक्ति सत्य के सभी पक्षों की जानकारी प्राप्त कर सके। इसलिए हम जो जानते हैं वह ठीक है, किन्तु उतना ही ठीक वह व्यक्ति भी हो सकता है जो हमारे विरुद्ध खड़ा है। यही जीवनदृष्टि अनेकांतवाद हमें प्रदान करता है।

अनेकांतवाद का दार्शनिक आधार यह है कि प्रत्येक वस्तु अनन्त गुण-पर्याय और धर्मो का अखण्ड पिण्ड है। वस्तु को तुम जिस दृष्टिकोण से देख रहे हो, वस्तु उतनी ही नहीं है। उसमें अनन्त दृष्टिकोणों से देखने की आवश्यकता है।[२] जैन दर्शन प्रत्येक वस्तु का 'उत्पादव्यय' और ध्रौव्य[३] की दृष्टि से अन्वेषण करता है। यही वस्तु का सत्य है। उत्पाद का अर्थ है जो वस्तु पहले से है वह अनादि है। व्यय का अर्थ है - प्रत्येक पदार्थ का परिवर्तित होना और ध्रौव्य का अर्थ है - परिवर्तन के बावजूद प्रत्येक वस्तु का द्रव्यत्व की दृष्टि से शाश्वत रहना। महावीर ने इसी सिद्धान्त के आधार पर (विभिन्न अपेक्षाओं की दृष्टि से) बहुत से प्रश्नों के उत्तर दिये हैं। परमाणु नित्य है या अनित्य ? इस पर महावीर नें उत्तर दिया कि द्रव्यत्व-अर्थात्, वस्तु के मूल गुणों की अपेक्षा वह नित्य है और वर्ण-पर्याय अर्थात्, बाह्य स्वरूप की दृष्टि से अनित्य है।[४] इसी प्रकार जयन्ती श्राविका के प्रश्न और महावीर के उत्तर अनेकांतवाद सिद्धान्त के पोषक हैं।

जैन दर्शन की सब से बड़ी देन यह है कि वस्तु तत्त्व को समझो, पक्षपात कहीं नहीं रहेगा। आज के युग में जबकि साम्प्रदायिकता, हिंसा और पक्षपात का बोलबाला है - ऐसे युग में महावीर की यह घोषणा कि - "मानवता के लिए अहिंसा बहुत आवश्यक है परन्तु दूसरों के पक्ष को न समझकर जो हम मानसिक हिंसा कर रहे हैं यह अधिक हानिकारक है।" मतों, सम्प्रदायों और राष्ट्रों के बीच बिना दूसरों के पक्ष को जाने हम स्वयं साम्प्रदायिक बन रहे हैं। वस्तु तत्त्व का अनेकांतवाद की दृष्टि से गहन अध्ययन करने पर ऐसी सच्चाइयां प्रस्कुटित हो सकती हैं, जिनका हमे पहले ज्ञान नहीं था। अतः जैन दर्शन की भारतीय संस्कृति को सब से बड़ी देन यह है कि - अपनी सीमित बुद्धि को ही चरम सत्य मत समझो परन्तु समस्त धर्मों में निहित सच्चाई को भी जानो।

---

१ संस्कृति के चार अध्याय – रामधारीसिंह 'दिनकर'।

२ संस्कृति के चार अध्याय – पृ. १५३

३ उपादव्यय ध्रौव्य युक्त सत् – तत्त्वार्थसूत्र

४ दव्वठयाए सासए वण्ण पज्जवेहिं जाव कास वज्जवेहिं।
असासए, से तेजड़े णं जाव – सियासाए असासए॥
(भगवतीसूत्र, १४/३४)

डॉ. मुलखराज जैन
(एम.ए., पी.एच.डी.)

दस वर्षो तक जैन शिक्षा निकेतन बोर्ड पंजाब, लुधिआना में शिक्षापति के रूप मे कार्य किया। आचार्य श्री आत्माराम जैन शिक्षा निकेतन, लुधिआना मे लगभग दस वर्षो तक मुख्यभ्राता के रूप में कार्यरत। तीन कृतियाँ प्रकाशित। 'पंजाब के हिंदी जैन कवियों का सर्वांगीण अध्ययन' और अध्ययन शोधकार्य पर स्वर्णपदक प्राप्त। शासकीय महाविद्यालय लुधियाणा एवं खालसा महाविद्यालय फगवाड़ा में पांच वर्ष तक अध्यापन कार्य।

मधुकर-मौक्तिक

भगवान् महावीर ने अपने प्रवचन में एक बहुत बड़ा सत्य उजागर किया है। उन्होंने कहा है - इस संसार में चारों ओर भय व्याप्त है। सभी प्राणी भयभीत हैं। भयभीत वे इसलिए हैं कि उन्हें अपनी नीति का ज्ञान नहीं है। यदि आत्मनीति का ज्ञान हो जाए तो भय अवश्य ही भाग जाएगा; इसलिए यदि आत्मनीति को जानना है, तो नवकार के निकट जाना होगा। नवकार आत्मनीति का कल्याणकारी ज्ञान करायेगा। नीति का आगमन होते ही भीति भाग जाएगी।

– जैनाचार्य श्रीमद् जयंतसेनसूरि 'मधुकर'

दिलसे भ्रम निकला नहीं, स्नेह गया अति दूर।
जयन्तसेन विभ्रति मति, दूर करे सब नूर॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org